ओ३म्

महर्षि दयानन्द की विशेषताएँ

लेखक : महात्मा नारायण स्वामी

महर्षि दयानन्द की विशेषताएँ

स्वामी दयानन्द १९वीं शताब्दी के सबसे बड़े वेद के विद्वान, धर्म प्रचारक, समाज-संशोधक, देशोद्धारक और सर्वतोमुखी सुधारक थे। उनकी विशेषतायें यह थीं–

धार्मिक-सुधार

(१) वे वेद को सत्य विद्याओं का ग्रंथ मानते थे। उनकी दृष्टि में वेद के सभी शब्द यौगिक और इसीलिए मानवी इतिहास शून्य और उनकी सभी शिक्षायें नित्योपयोगी हैं। इसी दृष्टिकोण से उनकी प्रचारित वेदार्थ-शैली ने उन्हें सायण आदि वेद भाष्यकारों की कोटि से पृथक् कर यास्काचार्य आदि नैरुक्तों की श्रेणी में पहुंचा दिया था।

(२) उन्होंने शंकर, रामानुज आदि प्रायः सभी मध्यकालीन आचार्यों के संकोच की अवहेलना करते हुए वेद का द्वार मनुष्यमात्र के लिए खोल दिया और 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः (यजुर्वेद २/६२)' की घोषणा करते हुए स्त्रियों, शूद्रों और अतिशूद्रों को भी वेदाध्ययन का अधिकारी ठहराया।

(३) उन्होंने वेदमात्र को स्वतः प्रमाण और वेदेतर सभी ग्रंथों को परतः प्रमाण बतलाते हुए मूर्तिपूजा, मृतक-श्राद्धादि पौराणिक प्रथाओं को अवैदिक प्रकट करते हुए हेय ठहराया और घोषणा की कि वेद केवल निराकार ईश्वर की पूजा का विधान करते हैं।

(४) स्वामी दयानन्द के प्रादुर्भाव के समय देशवासी वेद के नाममात्र से परिचित थे, उन्हें यह मालूम नहीं था कि वेद की शिक्षा क्या है? इसी कारण यह संभव हो सका कि एक पोर्तुगीज पादरी ने एक संस्कृत पुस्तक वेद के नाम से गढ़ कर उसमें ईसाई मत की शिक्षा अंकित की और उसके द्वारा मद्रास प्रान्त में अनेक लोगों को ईसाई बनाया परन्तु स्वामी जी ने इतने बल से वेद प्रतिपादित धर्म का प्रचार किया और उनकी शिक्षा के प्रकट करने के लिए ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका, सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों की रचना की जिससे भविष्य में धोखे से हिन्दुओं को विधर्मी बनाना सुगम नहीं रहा।

(५) जो लोग उपर्युक्त भांति या अन्य प्रकार से धर्मभ्रष्ट किये गये थे उनके लिये शुद्धि का द्वार खोलकर उन्हें फिर हिन्दू बनने की शिक्षा दी और एक जन्म के

मुसलमान को देहरादून में शुद्ध करके शुद्धि का क्रियात्मक रूप भी जनता के सामने रखा।

(६) देश में हिन्दू धर्म के विरुद्ध साहित्य से वैदिक सभ्यता का मान घट रहा था और उसका स्थान अनेक उत्पातों की मूल पश्चिमी सभ्यता ले रही थी, प्राचीन संस्कृत साहित्य निकम्मा और वेद गड़रियों के गीत कहे जाने लगे थे और देशवासी विशेष कर अंग्रेजी शिक्षित पुरुष, आंखे बन्द कर अंग्रेजी साहित्य और पश्चिमी रस्म-रिवाज पर मोहित होकर पश्चिमी लोगों के पीछे चलने में गौरव मानने लगे थे, इस परिस्थिति और देश में उपस्थित ऐसे वातावरण को बदलकर प्राचीन सभ्यता का मान उत्पन्न करके "वेद की ओर चलो" (Back to the vedas) की ध्वनि को प्रतिध्वनित कर देना स्वामी दयानन्द के महान् व्यक्तित्त्व, उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य, उनके त्याग और तपस्या और उनके अपूर्व पांडित्य एवं निर्भीकतापूर्ण सत्य उपदेशों का ही फल था।

हिन्दी प्रचार

(७) देश के नवयुवक मातृ (हिन्दी) भाषा को अंग्रेजी की वेदी पर बलिदान कर चुके थे और हिन्दी गन्दी कहलाने लगी थी; हिन्दी पुस्तक या हिन्दी अखबार पढ़ना फैशन के विरुद्ध समझा जाने लगा था, परन्तु स्वामी दयानन्द ने अपने जगत् प्रसिद्ध ग्रन्थों को हिन्दी में लिखकर, जबकि उनकी मातृभाषा गुजराती थी, इस बेढंगी चाल को भी बदल दिया। अब सभी जानते हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा (Lingua Franca) समझी और मानी जाने लगी है और उसका प्रचार तथा साहित्य दिनदूनी और रात चौगुनी उन्नति कर रहा है। विश्वविद्यालयों में भी उसका मान नित्यप्रति बढ़ रहा है।

सामाजिक-सुधार

(८) सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में भी ऋषि दयानन्द का हृदय बड़ा विशाल था और उन्होंने कुरीतियों को समाज से निकाल देने का प्रशंसनीय यत्न किया। उदाहरण के लिए कतिपय सुधारों का यहां उल्लेख किया जाता है।

(क) बालविवाह का प्रचार और ब्रह्मचर्य का लोप हो जाने से शारीरिक बल का ह्रास हो रहा था, इसीलिए दूसरों की अपेक्षा हिन्दू जाति निर्बल समझी जाने लगी थी; इसी कारण उसे समय-समय पर अपमानित भी होना पड़ा था। स्वामी दयानन्द ने इसके विरुद्ध प्रबल आवाज उठाई और ब्रह्मचर्य की महिमा अपने उपदेशों और अपने क्रियात्मक जीवन से प्रकट कर ब्रह्मचर्य का सिक्का लोगों के हृदय में जमा दिया। उसी का फल है कि देश में जगह-जगह ब्रह्मचर्याश्रम खुले, [illegible] विश्व-विद्यालयों ने भी अनेक जगह नियम बना दि[illegible] विद्यार्थियों का प्रवेश न हो और शारदा ऐक्ट [illegible]

(ख) इसी बाल-विवाह में वृद्ध-विवाह ने भी [illegible] दुष्परिणाम यह था कि जाति में करोड़ों विध[illegible]

बाल-विधवाएँ भी थीं और उनमें हजारों ऐसी भी विधवाएँ थीं जिनकी आयु एक-एक, दो-दो वर्ष थी। भ्रूण-हत्या, गर्भपात, नवजात-बालवध आदि अनेक पातक हिन्दू जाति के लिये कलंक का टीका बन रहे थे। इन दुखित विधवाओं का दुःख ऋषि दयानन्द का दयालु हृदय किस प्रकार सह सकता था, इसीलिये विधवा विवाह को प्रचलित करके इनके दुःखों को दूर करने की भी चेष्टा की।

(ग) मातृशक्ति होते हुए भी स्त्रियों का जाति में अपमान था, वे शिक्षा से वंचित करके परदे में रखी जाती थी; उनके लिए वेद का द्वार बन्द था। उनको यदि श्रीमत् शंकराचार्य ने नरक का द्वार बतला रखा, तो दूसरी ओर गोस्वामी तुलसीदास जी 'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु-नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' का ढोल पीट रहे थे, परन्तु ऋषि दयानन्द ने उनके लिये भी वेद का द्वार खोला, इन्हें शिक्षा की अधिकारिणी ठहराया, पर्दे से निकाला, उन्हें मातृ शक्ति के रूप में देखा और उनका इतना अधिक मान किया कि हम ऋषि दयानन्द को एक छोटी बालिका के आगे उदयपुर में नतमस्तक देखते हैं। उसी का फल है कि आज कन्याओं की ऊंची से ऊंची शिक्षा का प्रबन्ध हो रहा है।

(घ) जन्म की जाति प्रचलित हो जाने से चार वर्णों की जगह हिन्दू जाति हजारों कल्पित जातियों और उपजातियों में विभक्त हो रही थीं। प्रत्येक का खान-पान, शादी-ब्याह पृथक्-पृथक् था। इन मामलों में जाति उपजाति का पारस्परिक सम्बन्ध न होने से हिन्दू जाति एक नहीं थी और न उसका कोई सम्मिलित उद्देश्य बाकी रहा था, न उस उद्देश्य की पूर्ति के सम्मिलित साधन उसके अधिकार में थे। ऋषि दयानन्द ने इस जन्म की जाति को समूल नष्ट करने की शिक्षा दी थी, क्योंकि यह सर्वथा वेद विरुद्ध थी। उसी के फलस्वरूप अब हिन्दुओं में अन्तर्जातीय सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह होने लगे और इनके प्रचारार्थ अनेक संस्थाएं बन गयीं।

(च) दलित जातियों के साथ उच्च जातियों का व्यवहार अत्यन्त आक्षेप के योग्य और उनके लिए असह्य भी था, उसी के दुष्परिणाम स्वरूप बहुसंख्या में दलित भाई ईसाई और मुसलमान बन रहे थे। ऋषि दयानन्द ने इसके भी विरुद्ध आवाज उठाई और उन्हें खान-पान आदि सहित उन सभी अधिकारों के देने का निर्देश दिया जो उच्च जातियों को प्राप्त हैं। देश भर में ऋषि के इस निर्देश की पूर्ति के लिए जद्दोजहद हो रहा है और हिन्दुओं के मध्य से छूत-अछूत का भेद तथा छुआछूत का विचार ढीला पड़ रहा है।

(छ) दान की व्यवस्था की ओर भी स्वामी दयानन्द ने ध्यान दिया, मनुष्य को निकम्मा बनाने के लिए दान देने की कुप्रथा प्रचलित थी, उसका बलपूर्वक खंडन किया और उसके स्थान पर देश काल तथा पात्र को देखकर सात्विक दान देने की प्रथा प्रचलित की।

राजनैतिक-सुधार

(९) राजनैतिक सुधार की ओर भी ऋषि दयानन्द ने देशवासियों का ध्यान खींचा और उस समय जब देश में किसी राजनीतिक संस्था का अस्तित्व तक नहीं था ऋषि दयानन्द का इस सम्बन्ध में दृष्टिकोण क्या था, वह बतलाने के लिए उनके जगत्-प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' से कुछ वाक्य यहां उद्धृत किये जाते हैं....

(क) "अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखंड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है।" (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास)

(ख) हिन्दुओं में प्रचलित छूतछात का खंडन करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि 'इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते, विरोध करते-करते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं।" (सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास)

(ग) "उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाए।" (सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास, पृष्ठ २८०)

(घ) "सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य कुल ही में पैदा हुए थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजा भ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा...." (सत्यार्थप्रकाश, ११ समुल्लास पृष्ठ २९०-२९१)

(च) "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है। वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

.... ममतान्तर के आग्रह रहित -----------------------------------

पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास, पृष्ठ २३८)

स्वदेशी वस्तु-प्रेम

(१०) स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की भी ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रंथों में जगह-जगह शिक्षा दी है। उसी का फल यह है कि वर्तमान आंदोलन के बहुत पहले से आर्यसमाज के अनेक सदस्य नियम से देशी वस्त्रादि का प्रयोग करते हैं।

सहिष्णुता

(११) ऋषि दयानन्द में सहिष्णुता कमाल की थी। उन्हें जब अनूपशहर में एक व्यक्ति ने पान में रखकर विष दिया और सैयद मुहम्मद मजिस्ट्रेट ने उस अपराध में

विष देने वाले को पकड़वाकर हवालात में बन्द करा दिया, तो स्वामी दयानन्द ने उसे छुड़वा दिया, और कहा 'मैं दुनिया को कैद कराने नहीं किन्तु कैद से छुड़ाने आया हूं।

ब्रह्मचर्य

(१२) ऋषि दयानन्द ब्रह्मचर्य की मर्यादा का कितना ध्यान रखते थे, उसका कुछ अनुमान इस घटना से किया जा सकता है कि एक दिन जब वे मथुरा में यमुनातट के विश्रांत घाट पर समाधिस्थ थे, उस समय एक देवी ने श्रद्धा से अपना सिर उनके पांव पर रख दिया तब उन्होंने प्रायश्चित रूप में ३ दिन तक उपवास रखा था।

वीरता

(१३) कर्णवास में स्वामी दयानन्द एक दिन गंगा तट पर उपदेश दे रहे थे। बरोली के राव कर्णसिंह कुछ हथियारबंद साथियों के साथ वहां आये और कुछ बात-चीत करते-करते वह इतने क्रोध में आ गये कि उन्होंने तलवार खींच कर स्वामी जी पर आक्रमण कर दिया, स्वामी जी ने तलवार छीनकर दो टुकड़े कर दिये और राव साहब को पकड़कर कहा 'मैं तुम्हारे साथ इस समय वह सलूक कर सकता हूं, जो किसी आतताई के साथ किया जा सकता है, परन्तु मैं संन्यासी हूं इसलिए छोड़ देता हूं, जाओ ईश्वर तुम्हें सुमति देवे।'

निर्भीकता

(१४) एक दिन बरेली में स्वामी जी को व्याख्यान देना था, उससे पहले दिन वे ईसाई मत का खंडन कर चुके थे। उनसे कहा गया कि आज आप ईसाई मत का खंडन न करें, क्योंकि इससे वहां के उच्च राज्य कर्मचारी अप्रसन्न होंगे। व्याख्यान में कमिश्नर आदि उपस्थित थे। स्वामीजी ने गरजकर कहा…… 'लोग कहते हैं कि असत्य का खंडन न कीजिए, इससे कमिश्नर अप्रसन्न होगा, कलैक्टर नाराज होगा, परन्तु चाहे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।'

योग की विभूति

(१५) प्रयाग में एक दिन स्वामी जी सभा में विराजमान थे। पं. सुन्दरलाल जी आदि अनेक प्रतिष्ठित सज्जन भी उपस्थित थे। स्वामी जी यकायक हंस पड़े। कारण पूछने पर प्रकट किया कि एक पुरुष मेरे पास आ रहा है, उसके आने पर एक कौतुक दिखाई देगा। थोड़ी देर के बाद ही एक आदमी स्वामी जी के लिए मिठाई लाया और कहा कि महाराज इसमें से कुछ भोग लगाएं। स्वामी जी थोड़ी सी मिठाई लाने वाले को देने लगे, परन्तु उसने लेने और खाने से इन्कार कर दिया।.इस पर स्वामीजी हंस पड़े। थोड़ी मिठाई एक कुत्ते को खिलाई गयी, वह फौरन मर गया, क्योंकि मिठाई में जहर मिला हुआ था। जब उस मिठाई लाने वाले को पुलिस के हवाले करने लगे, तो

स्वामी जी ने यह कहकर छुड़वा दिया कि यह स्वयं अपने पाप के कारण लज्जित है, और कांप रहा है।

अपूर्व विद्वत्ता

(१६) कर्णवास में अनूपशहर के पं. हीरावल्लभजी एक धुरंधर संस्कृत कतिपय साथियों के साथ स्वामीजी के पास आये और शास्त्रार्थ के लिए सभा संगठित हुई। पं. हीरावल्लभ ने बीच मे ठाकुर जी का सिहासन रख दिया, जिस पर शालिग्राम आदि की मूर्तियां थीं और प्रतिज्ञा की कि स्वामी जी से इन्हें भोग लगवाकर उठूंगा। छः दिन तक बराबर धाराप्रवाह संस्कृत में शास्त्रार्थ होता रहा। सातवें दिन हीरावल्लभ जी ने प्रकट कर दिया कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं वही ठीक है, और सिहासन से मूर्तियों को उठाकर गंगा में प्रवाहित कर दिया और सिंहासन पर वेद की स्थापना की।

विश्व-प्रेम

(१७) ऋषि दयानन्द का दृष्टिकोण वेद की शिक्षानुकूल जातीयता-पूर्ण (Nationalistic) नहीं था, किन्तु विश्व-प्रेम पूर्ण (Humanistic) था, इसीलिए उनके ग्रंथों में जगह-जगह यही भावना आदर्श रूप में मिलती है। वास्तव में वर्तमान संकुचित जातीयता का विचार संसार में शांति स्थापित नहीं कर सकता।

आत्म निरीक्षण

(१८) आत्म निरीक्षण ऋषि दयानन्द के दैनिक कार्यक्रम में सम्मिलित था। हरिद्वार में कुम्भ के मेले के अवसर पर जब उन्होंने 'पाखंड-खंडिनी पताका' लगाकर धर्म-प्रचार किया, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि प्रचार का जितना प्रभाव होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ। उन्हें इसका कारण .अपने तप की न्यूनता जान पड़ी। तभी से उन्होंने सर्वमेध यज्ञ करके केवल एक लंगोटी पहन कर गंगा के तट पर विचरना शुरू किया और अनेक वर्ष इसी प्रकार व्यतीत किए।

अन्त समय मृत्यु का अद्भुत दृश्य

स्वामी जी का अन्त समय आया और अजमेर में अनेक सज्जन उनके अंतिम दर्शन करने पहुंचे। उनमें लाहौर के प्रसिद्ध विद्वान् पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम.ए. भी थे। गुरुदत्त को ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं था, परन्तु स्वामी जी के लिए बड़ी श्रद्धा थी। स्वामी जी ने सबसे बातचीत करके रुखसत कर दिया। अब वे जिस शय्या पर थे उस पर बैठ गए। उन्होंने कुछ प्राणायाम किया। प्राणायाम के बाद कुछ

वेदमंत्रों का उच्च स्वर से उच्चारण किया। मंत्राच्चारण करते-करते उनके मुख पर मुस्कुराहट आई। गुरुदत्त सोचने लगे कि मौत का नाम सुनकर लोग काँप जाया करते हैं परन्तु इस मृत्यु का स्वामी दयानन्द पर प्रभाव नहीं, वे दुःखी होने की जगह मुस्करा रहे हैं। स्वामी दयानन्द की यह मुस्कुराहट एक विद्युत थी, जिसने गुरुदत्त के हृदय में जाकर वहां नास्तिकता का जो कूड़ा करकट जमा था उसे भस्म करके गुरुदत्त को उच्चकोटि का आस्तिक बना दिया। स्वामी दयानन्द मुस्कराते हुए बोले, 'प्रभो आपने अच्छी लीला की, आपकी इच्छा पूर्ण हो।' इन शब्दों के साथ ही उन्होंने अंतिम श्वांस खींचा और दुनिया से रुखसत हो गए। मृत्यु के इस अद्भुत दृश्य ने प्रकट कर दिया कि जो महान् पुरुष ईश्वर विश्वासी होते हैं, जिनके हृदय में परोपकार के भाव भरे रहते हैं और जिनका संसार में किसी से ईर्ष्या, द्वेष नही होता, वे इस प्रकार प्रसन्न वदन, मुस्कराते और ईश्वर को स्मरण करते हुए ही संसार से कूच किया करते हैं।

आर्यसमाज की मान्यताएँ

आर्य–श्रेष्ठ, कुलीन और सदाचारी मनुष्य को कहते हैं।

समाज– मनुष्यों के समूह और सभा को कहते हैं, अर्थात् ऐसा स्थान या ऐसी सभा जिसका उद्देश्य स्वंय सदाचारी बनना और अन्यों को बनाना है। इसकी स्थापना ७ अप्रैल सन् १८७५ को बम्बई में हुई थी जो भारत का बहुत बड़ा नगर है।

इसके संस्थापक व प्रवर्त्तक का शुभ नाम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती है जो आदित्य ब्रह्मचारी थे, सत्यमानी, सत्यकारी व सत्योपदेशक थे। वेद और शास्त्रों के महान् विद्वान थे।

इनके जीवन का उद्देश्य संसार को मिथ्या ज्ञान, मिथ्या विचार और मिथ्या विश्वास से मुक्त करके बुद्धि और सत्य मार्ग पर लाना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की और कई ग्रंथ लिखे, जिनमें मुख्य सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और संस्कार विधि हैं। ऋग्वेद और सम्पूर्ण यजुर्वेद का भाष्य संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में किया है।

इस समाज के स्वामी जी ने ये दस नियम बनाये :

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर, सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(५) सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिए।

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

इन नियमों को मानने वाला व्यक्ति आर्यसमाज का सदस्य हो सकता है।

अनादि पदार्थ और उनके गुण, कर्म व स्वभाव

ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीन पदार्थों को आर्यसमाज अनादि मानता है।

ईश्वर— वह है जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, वह सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है, उसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता, सब जीवों को सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त है। वह एक ही है, अनेक नहीं।

जीव- ईश्वर से नितान्त भिन्न एक परिच्छिन्न चेतन पदार्थ है। कुछ गुणों में साधर्म्य और कुछ गुणों में वैधर्म्य भी है अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान गुण वाला है।

प्रकृति— जड़ पदार्थ है और जगत् बनाने की सामग्री है।

प्रत्येक वस्तु को बनाने से पूर्व उसके लिए तीन कारणों की आवश्यकता होती है। उनके नाम और उनकी परिभाषा यह है:

(१) निमित्तकारण (मुख्य व साधारण दो प्रकार के हैं) (२) उपादान कारण (३) साधारण कारण।

निमित्त कारण— उसे कहते हैं जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने, आप स्वयं बने नहीं, दूसरे को प्रकारान्तर बना देवें।

उपादान कारण— उसे कहते हैं, जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होकर बने और बिगड़े भी।

साधारण कारण— उसे कहते हैं जो बनाने में साधन हो और साधारण निमित्त हो।

(१) मुख्य निमित्त कारण परमात्मा है जो सब सृष्टि को कारण (प्रकृति) से बनाने, धारण और प्रलय करने तथा सबकी व्यवस्था रखने वाला है।

साधारण, निमित्त कारण 'जीव' है जो परमेश्वर की सृष्टि में पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर बनाने वाला है। इसी के लिए परमेश्वर ने सृष्टि की रचना की है।

(२) उपादान कारण 'प्रकृति' है जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से आप से आप न बन सकती है न बिगड़ सकती है किन्तु किसी

चेतनकर्त्ता के बनाने से नियमपूर्वक बनती व विगाड़ने से नियमपूर्वक बिगड़ती है।

(३) 'साधारण कारण' वे उपकरण (औजार) हैं। जिनसे कोई वस्तु बनाई जाती है। देश और काल भी इसमें सम्मिलित हैं।

पदार्थों के प्रकार

पदार्थ दो ही प्रकार के होते हैं—नित्य और अनित्य।

नित्य— जिनका न आदि हो और न अन्त हो।

अनित्य- जिनका आदि हो और अन्त भी हो।

तीसरे प्रकार के पदार्थों का होना ही असम्भव है। जैसे 'अनादि सान्त' या 'सादि अनन्त'।

ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों नित्य पदार्थ हैं। इनका न आदि है और न अन्त है।

परन्तु जगत् स्वरूप से अनित्य है। यह उत्पन्न होकर नियत काल तक स्थित रहकर विनष्ट हो जाता है। ईश्वर में उत्पादक और विनाशक दोनों शक्तियाँ अनादि काल से (अर्थात् स्वाभाविक) हैं। इनके प्रभाव से जगत् की उत्पत्ति और विनाश अनादि काल से एक के पीछे दूसरा होता रहता है। ऐसा होते रहने को 'प्रवाह से अनादि' कहते हैं।

जगत् को उत्पन्न करने का उद्देश्य

जीवात्मा की शक्तियों के पूर्ण विकास अर्थात् किये हुए कर्मों के फल-भोग और परमानन्द (मुक्ति) की प्राप्ति के लिए जगत् का निर्माण हुआ।

अथवा

प्रकृति से परमात्मा पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करके लाभान्वित होने के अर्थ जगत् उत्पन्न किया गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में ४ ऋषियों के द्वारा वेद ज्ञान का प्रकाश किया। ऋषियों के नाम यह है—अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा। यह देहधारी मनुष्य थे और सब जीवों से अधिक पवित्र आत्मा थे, यह पवित्रता उन्होंने पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मों से प्राप्त की थी।

ऋषि— उसे कहते हैं जो वेद मन्त्रों के अर्थों के सूक्ष्म द्रष्टा हों या जिनमें ऐसी योग्यता हो।

चार वेद यह हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

वेदों के चार विभाग का कारण

(१) ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है जिससे उनमें प्रीति बढ़कर उपकार लेने की प्रवृत्ति हो सके।

(२) यजुर्वेद में गुण ज्ञान के अनन्तर क्रियारूप उपकार करके सब जगत् का

अच्छे प्रकार से हित हो सके, इस विद्या को जताया है।

(३) सामवेद में ज्ञान, कर्म और उपासना कांड की वृद्धि का फल कितना और कहां तक होना चाहिए इसका विधान किया है।

(४) अथर्ववेद—तीन वेदों में जो-जो विद्या हैं उन सबके शेष भाग की पूर्ति, विधान रक्षा और संशय-निवृत्ति के लिए है।

मनुष्य समाज और मनुष्य जीवन के चार विभाग

वेदों के उपदेश और मनुष्य शरीर की रचना के आधार पर मनुष्य समाज का विभाग चार भागों में किया गया है जिनको 'वर्ण' नाम से कहते हैं और वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। मनुष्य जीवन का विचार चार आश्रमों में किया गया है। वे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यासाश्रम हैं।

ब्राह्मण वर्ण—अविद्या के नाश, विद्या की वृद्धि और सदाचार की शिक्षा के लिए। शम, दम, तप, शौच, आस्तिक्य, ज्ञान और विज्ञान इसके विशेष गुण होंगे।

क्षत्रिय वर्ण— अन्याय के नाश और जाति, पतित और दुःखित जनों की रक्षा के लिए। शौर्य, धृति, दक्षता और युद्ध से पलायन न करना और ईश्वर-भावादि क्षत्रिय के विशेष गुण होंगे।

वैश्य वर्ण—जीवन-यापन की आवश्यक सामग्री को उत्पन्न करना और इधर-उधर से लाकर जुटाना वैश्य कर्म हैं।

शूद्र वर्ण—जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे, वह निर्बुद्धि व मूर्ख होने से शारीरिक श्रम द्वारा उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा और सहायता करने के लिए शूद्र हैं।

वे वर्ण गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर होते हैं, जन्म के आधार पर नहीं।

आर्यसमाज मनुष्य मात्र के बालकों व बालिकाओं को बिना किसी भेद-भाव के समान रूप से विद्या प्राप्त करने का अधिकारी मानता है और विद्यालय में पढ़ाई की समाप्ति पर जिस-जिस विद्यार्थी का जो-जो वर्ण उनकी योग्यतानुसार उनका आचार्य निश्चित करें, वह-वह उनका "वर्ण" मानता है चाहे उनका पिता का कुछ भी वर्ण हो।

धर्माचरण से नीच वर्ण उच्च वर्ण को और धर्माचरण से उच्च वर्ण नीच वर्ण को प्राप्त हो सकता है।

आश्रम

पहला आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम यह विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने के लिए है। जब बच्चा पैदा होता है तो सबसे पहले मां-बाप उसकी देखभाल रखते हैं और अभ्यास के साथ उसका पालन करते हैं। जब कुछ बड़ा हो जाता है तब उसको गुरु के पास पढ़ने के लिए बैठा देते हैं। इसी का नाम ब्रह्मचर्य आश्रम है। इसकी अवधि लड़के के लिए कम से कम २५ साल और लड़की के लिए १६ साल रखी गयी है। इस आश्रम की जिम्मेदारी तीन व्यक्तियों पर होती

है। पहली माता, जो पांच वर्ष तक उसे आवश्यक बातों का अभ्यास कराती है, यदि माता योग्य हो तो वह अपने बच्चे को अच्छी-अच्छी बातें सिखाता है और बच्चा बिना परिश्रम के बहुत सी ज्ञान की बातें सीख लेता है। यदि माता कुलक्षणी हो तो उसका बच्चा आरम्भ से ही बुरी बातें सीख लेता है और उसका सुधारना कठिन हो जाता है।

पांच वर्ष के पीछे बच्चा पिता के साथ रहने लगता है। यदि बाप बुरा है तो बच्चा बुरा और अच्छा है तो अच्छा हो जाता है। जब बच्चा आठ साल का होता है तब उसका उपनयन करा के गुरु के पास विद्या प्राप्ति के लिए भेज देते हैं। यह नियम लड़के और लड़की दोनों के लिए समान है। परन्तु भेद यह है कि लड़के और लड़की इस अवस्था के पश्चात् अलग-अलग पाठशालाओं में भेज दिए जाते हैं। सहशिक्षा इस काल के पश्चात् नहीं दी जाती, जो सदाचार की बाधक है।

दूसरा गृहस्थाश्रम— यह सब प्रकार के उत्तम व्यवहार सिद्ध करने के लिए है अर्थात् सन्तान उत्पन्न करना और उसको योग्य बनाना, धर्म से धन कमाना और धर्म में व्यय करना और अन्य आश्रमियों का पालन। इसलिए इसे ज्येष्ठ आश्रम भी कहते हैं। जो आचार से रहता हुआ आजन्म ब्रह्मचारी रहना चाहे वह रह सकता है। परन्तु जो न रह सके वह अपने-अपने वर्ण में विवाह कर सकता है ऐसे पुरुष के लिए भी कम से कम २५ वर्ष और कन्या के लिए १६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहना अनिवार्य है। विवाह करने वाले पुरुष और स्त्री यदि २५ वर्ष से भी दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य रखना चाहें तो रख सकते हैं। परन्तु ४८ वर्ष के पश्चात् नहीं रखना चाहिए।

कुमार जौर कुमारी का धर्मशास्त्रानुसार दाम्पत्य सम्बन्ध वैदिक परिभाषा में विवाह कहलाता है। विधुर से विधवा के सम्बन्ध को पुनर्विवाह कहते हैं। यह शूद्र कर्म है, द्विज कर्म नहीं है, परन्तु पाप कर्म भी नहीं है।

विधुर का कन्या से विवाह अवैदिक कर्म है इसके करने से बहुत से बिगाड़ उत्पन्न हो जाते हैं, और इससे एक कुमार और एक विधवा के अधिकार का हनन होता है।

तीसरा वानप्रस्थ आश्रम— यह विज्ञान के बढ़ाने और तपश्चर्या करने के लिए है। यह गृहस्थ का मोह छोड़कर बाहर वन में जाकर रहने का आश्रम है। वर्तमान काल में वैदिक राज्य न होने के कारण वानप्रस्थियों को वन जाने की पर्याप्त सुविधायें नहीं हैं।

चौथा संन्यासाश्रम- यह वेदादि शास्त्रों का प्रचार, धर्म व्यवहार का ग्रहण, दुष्ट व्यवहार का त्याग, सत्योपदेश और सबको निःस्सन्देह करने के लिए है।

राज्य व्यवस्था

जैसा परम विद्वान् ब्राह्मण होता है वैसा ही विद्वान् सुशिक्षित क्षत्रिय को भी होना योग्य है कि जिससे सब राज्य की रक्षा न्याय से यथावत् करे।

... न देना चाहिए। राजा ... उसके आधीन सभा हो, सभा के आधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन हो। इसलिए तीन सभाओं का निर्माण किया जावे।

(१) विद्यार्य सभा। (२) धर्मार्य सभा। (३) राजार्य सभा।

महाविद्वानों को धर्म सभाधिकारी।

धार्मिक विद्वानों को विद्या सभाधिकारी.

प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सब में सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभाव युक्त महापुरुष हों उसको राजसभा का पतिरूप अर्थात् अध्यक्ष माना जावे।

उपर्युक्त सभाओं के सभासद् सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुष होने चाहिए, मूर्खों को कभी भर्ती नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसे पुरुषों के पीछे चलने से सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं। काम और क्रोध से उत्पन्न हुए व्यसनों में राजा को नहीं फंसना चाहिए।

काम से उत्पन्न हुए व्यसन दस हैं

(१) शिकार खेलना। (२) जुआ खेलना। (३) दिन में सोना। (४) काम-कथा या दूसरे की निन्दा किया करना। (५) स्त्रियों का अतिसंग। (६) मद्यपान। (७) गाना-बजाना। (८) नाचना, नाच कराना और देखना। (९) वृथा इधर-उधर घूमना।

इनमें फंसने से अर्थ अर्थात् राज्य, धनादि और धर्म से रहित हो जाता है।

क्रोध से उत्पन्न हुए आठ व्यसन

(१) चुगली करना। (२) बिना विचारे किसी स्त्री से बलात्कार, बुरा काम करना। (३) द्रोह करना। (४) ईर्ष्या करना। (५) दोषों में गुण और गुणों में दोषारोपण करना। (६) अधर्मयुक्त बुरे कर्मों में धनादि का व्यय करना। (७) कठोर वचन बोलना। (८) बिना अपराध कड़ा वचन या विशेष दण्ड देना। इनके करने से राजा शरीर से भी रहित हो जाता है।

युद्ध में योद्धा लोग किन-किन लोगों पर शस्त्र का प्रहार न करें......

न इधर-उधर खड़े, न नपुंसक, न हाथ जोड़े, न जिसके सिर के बाल खुले हुए हों, न बैठे हुए, न 'तेरे शरण हूं' ऐसे पर, न सोते हुए, न मूर्च्छित, न नग्न हुए, न आयुध से रहित, न युद्ध करते हुओं को देखने वालों, न आयुध के प्रहार से पीड़ा से प्राप्त हुए, न दुःखी, अत्यन्त घायल, न डरे हुए, न पलायन करते हुए पुरुष पर।

विशेष इस पर ध्य... और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न... अपने सन्तानवत् पालें और स्त्रियों को भी पालें, ...या के समान समझें, कभी विषयासक्ति की दृष्टि से ... प्रकार जम जाए और जिनमें

पुनः पुनः युद्ध करने की शंका न हों उनको सत्कारपूर्वक छोड़कर अपने घर व देश को भेज देवें।

सभापति राजा कैसा होना चाहिए—इस मनुष्य समुदाय में जो परम ऐश्वर्य का कर्त्ता शत्रुओं को जीत सके, जो शत्रुओं से पराजित न हो, राजाओं में सर्वोपरि विराजमान, प्रकाशमान् हो, सभापति होने को अत्यन्त योग्य प्रशंसनीय गुण-कर्म-स्वभाव युक्त, सत्करणीय और समीप जाने और शरण लेने योग्य सबको माननीय होवे उसको सभापति करे।

विदेश यात्रा

आर्यसमाज विदेश-यात्रा का और देश, देशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम और व्यवहार करने का विरोधी नहीं है। उनके मांसभक्षण और मद्यपानादि दोषों को छोड़कर गुणों को ग्रहण करें तो कुछ हानि नहीं।

भक्ष्याभक्ष्य

जो पशु पक्षी आदि अपनी मौत मर जाते हैं, उनका माँस भी न खावे। क्योंकि खाने वाले का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा, चोरी, विश्वासघात, छल-कपटादि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना है, वह भक्ष्य है।

जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि, बल, पराक्रम, वृद्धि और आयु ... होवे उन तण्डुलादि, गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टान्नादि पदार्थों ... यथायोग्य पाक मेल करके, यथोचित समय पर मिताहार भोजन ... कहलाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने ... सर्वथा त्याग करना और जो-जो जिन-जिन के लिए विहि... ग्रहण करना, यह भी भक्ष्य है।

एक ही थाल में साथ बैठकर खाने या पी... है। उच्छिष्ट किसी का भी न खाना च...

यदि कोई हिंसारहित शुद्ध भोज... भोजन बनावे तो उसका हाथ क... है।

मलिनता से र... नामधारी मनुष्...

युद्धा... उस ...

को पाप और ...

यदि कोई मूर्तियाँ पूजने (अर्थात् सेवा करने के) योग्य हैं तो वे माता-पिता आचार्य, अतिथि और पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए उसका पति है। तन, मन, और धन से यथायोग्य सेवा करना ही इनकी पूजा है। ईश्वर की प्रार्थना और उपासना द्वारा उनके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण स्वभाव को करते जाना और बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों को करना और भाव से संसार की सेवा करना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है।

विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें तथा सूचीपत्र मंगायें।

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५ खारी बावली दिल्ली-६

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् द्वारा आयोजित साईकल रैली (दिल्ली से एटा) के अवसर पर धर्मपाल आर्य मन्त्री आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ४५५, खारी बावली दिल्ली-६ से प्रकाशित एवं प्रसारित तथा रविन्द्रा आफसैट प्रेस A/26 नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया फेस II दिल्ली द्वारा मुद्रित कराया। प्रथम संस्करण 100,000 दिनांक 26.9.89 मूल्य 25/— सैकड़ा